छायावाद की राष्ट्रीय चेतना

- सन्तोष सिंह यादव
सहायक आचार्य
हिन्दी विभाग

छायावादी काव्य पर प्रातः आरोप लगता रहा है कि स्वाधीनता आन्दोलन के सघनतम काल में रचे जाने के बावजूद यह काव्य राष्ट्रीय चेतना से कटा हुआ है। छायावादी कविता को स्थूल दृष्टि से देखने पर ऐसा लगना स्वाभाविक है, किन्तु गहन विश्लेषण से सिद्ध होता है कि यह काव्य अपने समय के सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय संदर्भों को धारण ही नहीं करता, बल्कि उनकी प्रगति में यथासम्भव योगदान भी देता है।

कोई भी कविता अपने समकालीन यथार्थ से कई स्तरों पर सम्बंध स्थापित कर सकती है। कुछ कविताएँ ऐसी होती है, जो अपने समय की महत्वपूर्ण घटनाओं का वर्णन करके इतिहास बोध का परिचय देती है। घटनाओं के वर्णन से प्रतीत होता है कि कविता अपने समय से जुड़ी हुई है। दूसरी ओर कुछ कविताएँ ऐसी होती है जो अपने समय की घटनाओं का रोजनामचा नहीं लिखती बल्कि सांस्कृतिक व सामाजिक सत्यों का गहन विश्लेषण करती है। छायावादी कविता इसी प्रकार से अपने राष्ट्र समाज से जुड़ी है।

छायावाद में 'जागरण' शब्द का प्रयोग सभी कवियों ने अनेक सन्दर्भों में किया है। यह जागरण सूक्ष्म रूप में सांस्कृतिक नवजागरण और राष्ट्रीय-राजनीतिक जागरण ही है। प्रसाद कहते हैं- ''बीती विभावरी जागरी'' निराला कहते हैं- ''जागो फिर एक बार'' और महादेवी वर्मा कहती हैं- ''जाग तुझको दूर जाना है''।

छायावादी काव्य राष्ट्रीय जागरण की मूल चुनौतियों को गहराई से समझता है। जिस देश में सदियों की पराधीनता के कारण जातीय व सांस्कृतिक स्वाभिमान नष्ट हो चुका हो, वहाँ जागरण की पहली शर्त राष्ट्रीय स्वाभिमान की उत्पत्ति होती है।

छायावादी कवि इस बात को बखूबी समझते हैं कि राष्ट्रीय आन्दोलन के लिए राष्ट्रीय स्तर पर एक जुझारू मनःस्थिति का होना आवश्यक है। वे कविता के माध्यम से राष्ट्रीय समस्याओं का केवल विश्लेषण नहीं करते, बल्कि जुझारू मानसिकता के विकास का प्रयत्न भी करते हैं। प्रसाद लिखते हैं-

''अरुण यह मधुमय देश हमारा
जहाँ पहुँच अनजान क्षितिज को मिलता एक सहारा''।

छायावादी कविता अपने समय से कुछ ऐसे स्तरों पर भी जुड़ी है जो साधारण कविताओं के लिए सम्भव नहीं होता। कविता अपने समय की घटनाओं का वर्णन करे- यह कविता की सामाजिक दायित्व शीलता का मात्र एक पक्ष है। छायावादी कविता इससे आगे बढ़कर राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक समस्याओं के नए समाधान भी प्रस्तुत करती है। 'राम की शक्ति पूजा' की मूल समस्या यही है कि 1936 ई. के भारत मे अहिंसात्मक शक्ति निरर्थक प्रतीत होने लगी है। स्वाधीनता के संघर्ष में नए विकल्प के तौर पर निराला सुझाते हैं कि-

''शक्ति की करो मौलिक कल्पना, करो पूजन।
छोड़ दो समर जबतक न सिद्धि हो रघुनन्दन।।''

छायावाद की राष्ट्रीय चेतना अपने अन्तिम स्तर पर केवल राष्ट्र तक सीमित नहीं रहती, बल्कि सम्पूर्ण मानवता के स्तर पर सक्रिय हो जाती है जिसमें राष्ट्रीय हितों को परस्पर विपरीत नहीं बल्कि सुसंगत सत्यों के रूप में 'वसुधैव कुटुंबकम' कहकर व्याख्यायित किया जाता है। इस चेतना से युक्त छायावादी कवि कहता है-

''औरो को हँसते देखो मन, हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो, सबको सुखी बनाओ।।''

***